सवाई प्रतापसिंह का काव्य वैभव

गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
अध्यक्ष
आयुर्वेद विज्ञान परिषद् एवं साहित्य सरोवर संस्था

जयपुर नगर की स्थापना सवाई जयसिंह ने 18 नवंबर 1727 में की। सितंबर 1743 में उनके देहावसान के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह और तत्पश्चात् उनका कनिष्ठ पुत्र माधोसिंह जयपुर की राजगद्दी पर आसीन हुआ। माधोसिंह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र पृथ्वीसिंह (जो उस समय पाँच वर्ष का था) के नाम पर उनकी सौतेली माँ चूँडावत जी ने जयपुर पर शासन किया। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में पृथ्वीसिंह मरा या मार दिया गया और उक्त चूँडावत जी का पुत्र प्रतापसिंह जयपुर का राजा बना। उस समय उसकी आयु मात्र तेरह वर्ष थी। ऐसी स्थिति में उनकी माँ चूँडावत जी ही बालक राजा की संरक्षिका और अभिवाहिका बनी रही।

जगन्नाथ भट्ट सवाई प्रतापसिंह के दीक्षागुरू थे। उन्होंने उनके हृदय में भक्तिभावना सुदृढ की थी। इनके संगीत के गुरू उस्ताद चाँद खाँ थे, जो बुधप्रकाश के नाम से जाने जाते थे। वयस्क होते ही महाराजा प्रतापसिंह ने प्रशासन में बदलाव कर कुशल शासक का परिचय दिया। जयपुर नगर के निर्माण में सभी शासकों का न्यूनाधिक योगदान रहा किन्तु इन सवाई प्रताप सिंह का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय कहा जा सकता है। विश्वप्रसिद्ध भवन 365 खिड़कियों वाला सुन्दर हवामहल आपने ही बनवाया था। इसके अतिरिक्त चन्द्रमहल के कई विशाल भवन, रिध-सिद्ध पोल, बडा दीवानखाना, गोवर्धननाथ, बृजराज बिहारी, ठाकुर ब्रजनिधि तथा मदन मोहन जी के मन्दिर आपके स्थापत्य कलाप्रेम के द्योतक हैं। सन् 1778 में आप राजा बने और सन् 1787 में लालसोट के पास तूंगा के युद्ध में महादजी सिन्धिया जैसे नामवर मरहठा सेनापति को हरा कर आप राजस्थान के वीर योद्धाओं में अपना नाम सम्मिलित कराने में सफल रहे।

सुयोग्य शासक, वीर योद्धा, कलाप्रेमी होने के साथ ही आप एक भक्त कवि भी थे। आप 'ब्रजनिधि' के नाम से कविता किया करते थे। महाराजा प्रतापसिंह भगवान श्रीकृष्ण और उनकी प्राणेश्वरी राधा के चरणकमलों के उपासक थे। वे भगवान के रूप रस माधुर्य के अनन्य भक्त थे। उन्होंने भगवद् गुणानुवाद से अपनी काव्यसाधना सफल की।

यद्यपि वे राजस्थानी और पंजाबी में भी कविता कर लेते थे, किन्तु उन्होंने अपने काव्यसृजन में व्रजभाषा को ही अधिक महत्त्व दिया। उन्होंने अपना जो 'व्रजनिधि' उपनाम रखा, यह उनके ब्रजेश श्रीकृष्ण एवं व्रजभाषा के प्रति अनन्य अनुराग का परिचायक है। क्यों न हो, यह व्रजभाषा वस्तुत: 'बोरत भक्ति निचोरत ज्ञान में, गोविन्द के गुणगान की भाषा' जो है।

वे भक्ति रस तरंग अथवा मन की उमंग में जो पद अथवा छन्द रचते थे, उन्हें उसी दिन या अगले दिन अपने इष्टदेव गोविन्द देव तथा ठाकुर ब्रजनिधि जी को समर्पित करते थे। कम से कम पाँच वृत्त नित्य भेंट करने का उनका नियम था। आपने ऐश्वर्य के वातावरण में भी माधुर्य और श्री कृष्णभक्ति का जो स्रोत प्रवाहित किया, वह उनके अनन्य भगवत्प्रेम का परिचायक है। इस भक्तिपूर्ण रस के सामने उन्हें राजसुख अत्यन्त फीका लगता था। इस भाषा के प्रसिद्ध भक्त कवि घनानन्द और नागरीदास से वे बहुत प्रभावित थे। उन्होंने नागरीदास के कई पदों का संग्रह भी किया था। यह एक संयोग ही था, कि नागरीदास (किशनगढ़ के राजा सांवत सिंह) जी का जिस वर्ष स्वर्गवास हुआ, उसी वर्ष इन ब्रजनिधिजी का जन्म हुआ। नागरीदास जी ने राज्य का त्याग कर वृन्दावन में निवास किया था। आपने लिखा है-

कहा भयो नृप हू भए, ढोबत जग बेगार।

लेत न सुख हरिभक्ति को, सकल सुखान को सार।।

व्रजनिधिजी की स्वरचित कुल २२ कृतियाँ हैं, जिन्हें 'ग्रन्थ बाईसी' कहा गया है। ये 22 ग्रन्थ हैं:- फागरंग, प्रीति लता, सुहाग रैनि, विरहसलिला, रेखतासंग्रह, सोरठ ख्याल, स्नेह विहार, रमक जमक बत्तीसी, प्रीति पचीसी, व्रजसिंगार, सनेह संग्राम, नीतिमंजरी, शृंगारमंजरी, वैराग्यमंजरी, रंग चौपड़, प्रेम पंथ, दु:खहरन वेली, रास का रेखता, श्री ब्रजनिधि मुक्तावली, ब्रजनिधि पद संग्रह, प्रेम प्रकाश और हरिपद संग्रह। इन कृतियों में कवि ने इनका रचना काल भी अंकित किया है। इनके अतिरिक्त भर्तृहरि के शतकत्रय का नीतिमंजरी, शृंगारमंजरी और वैराग्यमंजरी के नाम से व्रजभाषा में पद्यानुवाद भी किया है। वे राधा कृष्ण की सौन्दर्योपासना में संलग्न रहे। इस सुधा का रसपान करने के लिये व्रजांगनाओं ने अपना सर्वस्व निछावर कर दिया था। सूरदास, रसखान, मीरां और नरसी मेहता आदि ने जिस कृष्ण भक्तिरस में अवगाहन करते हुये विविध पदों की रचना की, उसी प्रकार इस भक्त कवि ने विविध भक्तिपदों की रचना कर जीवन को धन्य बनाया था।

इन रचनाओं में भक्तिरस एवं शान्त रस के अतिरिक्त श्रृंगार तथा वात्सल्य रस के भी उदाहरण मिलते हैं। विविध

पदों के अतिरिक्त दोहा, सोरठा, मनहरण, सवैया, कुण्डलिया, छप्पय, चौपाई, बरवै और रेखता आदि अनेक छन्द भी इनकी रचनाओं में मिलते हैं। इन काव्यों में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और श्लेष आदि अलंकार अनायास ही आ गये हैं। अपने आराध्य को व्रज का श्रृंगार कह कर उनकी रूपमाधुरी का वे इस प्रकार वर्णन करते हैं-

प्यारो ब्रज को ही सिंगार।

मोर पखा अरु लकुट बाँसुरी, गर गुंजन को हार॥

बन बन गोधन सँग डोलिबो, गोपन सो कर यारी।

सुनि सुनि के सुख मानत मोहन, ब्रजवासित की गारी॥

विधि सिव सेस सनक नारद से, जाको पार न पावै।

ताको घर बाहर ब्रज सुन्दर, नाना नाच नचावै॥

ऐसो परम छबीलो ठाकुर, कहाँ कोहि नहिं आवै।

ब्रजनिधि सोई जानि है यह रस, जाहि स्याम अपनावै॥

कृष्णशरणागति का यह पद भी अवलोकनीय है-

जिन कै श्री गोविन्द सहाई।

सकल भय भाजे जात छिन में, सुख हिये सरसाई॥

सेस विधि सिव सनक नारद, सुक सुजस रहे गाई॥

द्रोपदी गज गीध गनिका, कारण कीये थाई॥

दीनबंधु दयाल हरि सों, नहिं कोई अधिकाई।

यह जिय में जानि 'ब्रजनिधि', गहे दृढ़ कर पाई॥

जैसा कि जीव गोस्वामी ने कहा है कि सदा सर्वदा मेरे एक मात्र आश्रय राधा कृष्ण हैं-

वृन्दावनेश्वरी राधा कृष्णो वृन्दावनेश्वरः ।

जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥

वैसे ही भक्त नागरीदास जी ने भी उद्बोधित किया है- 'जाइ ब्रज भोरे ! कोरे मन को रंगाइ लै रे, वृन्दावन रेनु रची गौर स्याम रंग की'। इन्हीं भक्तिपूर्ण उद्बोधनों से प्रेरित हो कर महाराजा सवाई श्री प्रतापसिंह 'व्रजनिधि' कृष्ण चरणारविन्द के चञ्चरीक और राधा पद पंकज के भ्रमर बने। उनकी यही सीख हमें सदैव प्रेरित करती रहेगी-

पायौ बड़े भागनि सो आसरो किसोरी जू कौ

ओर निरवाहि नीकें ताहि गहि गहि रै।

नैननि तैं निरखि लडैली को वदन चँद

ताहि को चकोर है कै रूप सुधा लहि रै।

स्वामिनी की कृपा तैं अधीन ह्वै 'ब्रजनिधि'

ताते रसना सों नित स्यामा नाम कहि रे !

मन मेरे मीत जो कही मानै मेरी तौ तू

राधा पद पंकज कौ भ्रमर ह्वैके रहि रे ।।

ऐसे राधाकृष्ण के परम भक्त और व्रजभाषा के सरस कवि मात्र 39 वर्ष की आयु प्राप्त कर सन् 1803 में ही गोलोकवासी हो गये। 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' के अनुसार व्रजतिथि जी का कीर्तिकार्य आज भी जीवित है और आगे भी जीवित रहेगा।